International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(5): 74-78

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(5): 74-78
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-04-2022
Accepted: 25-06-2022

Vivek Kumar
Research Scholar, Department of Sanskrit, CMP Degree College (University of Allahabad), Prayagraj, Uttar Pradesh, India

Dr. Satya Prakash Srivastava
Assistant Professor, Department Of Sanskrit, CMP Degree College (University of Allahabad) Prayagraj, Uttar Pradesh, India

Corresponding Author:
Vivek Kumar
Research Scholar, Department of Sanskrit, CMP Degree College (University of Allahabad), Prayagraj, Uttar Pradesh, India

संस्कृत रूपकों की तत्त्व मीमांसा

Vivek Kumar and Dr. Satya Prakash Srivastava

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2022.v8.i5b.1861

शोध सारांश
रूपकों की ज्ञानमीमांसा उसके तत्त्वमीमांसा पर आधारित है। ये तत्त्व है- वस्तु, नेता तथा रस। यही तीन तत्त्व रूपकों के बीज है जो विस्तारित होकर वृक्ष का रूप लेते है। प्रामाणिक और प्राथमिक स्त्रोतों के आधार पर रूपकों की तत्त्वमीमांसा के विवेचन से स्पष्ट होता है कि वस्तु, नेता एवं रस ही रूपकों के मूल तत्त्व है। जिससे दस रूपकों के भेद तथा लक्षण, कथावस्तुओं के विभिन्न प्रकार, नायक नायिका के प्रकार, उनके सहायक, तथा रसों के भेदोपभेद का विवेचन-विश्लेषण होता है। कथावस्तु, नेता एवं रस का सैद्धान्तिक, लाक्षणिक एवं प्रासंगिक विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र में किया गया है।

कूटशब्दः संस्कृत रूपकों, तत्त्व मीमांसा, वस्तु, नेता तथा रस

प्रस्तावना

संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने काव्य को दो प्रकार से विभाजित किया है- (१) दृश्य काव्य और (२) श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य का साधारण अर्थ है वह काव्य जिसे देखा जा सकता है। ऐसा काव्य जिसमें नाट्य की प्रधानता होती है, जिसको देखने मात्र से विशेष रस की अनुभूति होती है, तथा जिसका अभिनय होता है, दृश्यकाव्य की इसी विधा को रूपक कहते है। रूपक दस है। इन्ही रूपकों में एक नाटक है जो अपने अर्थ का विस्तार करके सामान्यतः आधुनिक भारतीय भाषाओं में दृश्यकाव्य मात्र का अर्थ देता है। यद्यपि यह नाटक शब्द बहुत व्यापक अर्थ में प्रचलित है, किन्तु संस्कृत में इसका अर्थ सीमित है। इस सन्दर्भ में दृश्यकाव्य के पर्याय नाट्य, रूप एवं रूपक के अर्थ को आचार्य धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में स्पष्ट रूप से वर्णित किया है। उनके चतुर्विध अभिनय (आङ्गिक, वाचिक, सात्त्विक तथा आहार्य) के माध्यम से नट द्वारा विविध पात्रों की अवस्था विशेष का अनुकरण नाट्य [1] है। नाट्य ही रङ्गमंच पर अभिनीत होने से चक्षुरिन्द्रिय का विषय बन जाने पर रूप [2] कहलाता है। नट में पात्र की अवस्था के आरोप होने से उसी नाट्य या रूप को शास्त्रीय दृष्टि से रूपक कहते हैं, इस प्रकार आरोप ही रूपक है। [3] जैसे मुख पर चन्द्रमा के आरोप होने से 'मुखचन्द्र' में रूपकालङ्कार है वैसे ही नाट्य के नट में राम आदि पात्रों की अवस्था का आरोप होता है। अतः नाट्य भी रूपक है। ये रूपक केवल भाव पर आश्रित[4] न होकर रसाश्रित होते

---

1 "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्" -दशरूपक १/७।
2 "रूपं दृश्यतयोच्यते" -दशरूपक १/७।
3 "रूपकं तत्समारोपाद्" -दशरूपक १/७।
4 अन्यद् भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताललयाश्रितम् -दशरूपक १/९।

है। रस पर आश्रित रूपक दस प्रकार के है- नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क तथा ईहामृग।

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोग-समवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति॥
-दशरूपक १/८।

रूपकों के तत्त्व-

रूपकों के भेद वस्तुतः तीन आधारों वस्तु, नायक तथा रस पर किए गए है। ये ही रूपको के तत्त्व कहलाते हैं। जिनका क्रमशः विवेचन इस प्रकार है-

वस्तु तत्त्व-

दृश्यकाव्य के कथानक को वस्तु कहते हैं। यह रूपकों के भेद करने वाले उपादानों में प्रथम है। वस्तु के कई प्रकार से भेद किये जाते है-

(क) **महत्त्व के आधार पर:** वस्तु के दो भेद है- आधिकारिक और प्रासङ्गिक आधिकारिक कथावस्तु वह है जिसको लेकर नाटक आदि का निर्माण होता है जैसे रामायण में राम की कथा। निरुक्त के अनुसार आधिकारिक कथावस्तु का लक्षण है-

अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वर्त्यमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्। [5]

प्रासङ्गिक कथावस्तु वह है जो मुख्य कथावस्तु के विकास में सहायक होती है। जैसे रामायण में विभीषण, सुग्रीव आदि की कथाएँ। दशरूपक में प्रासङ्गिक कथावस्तु का लक्षण है-

प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः। [6]

यही प्रासङ्गिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है- पताका और प्रकरी। जब प्रासङ्गिक कथावस्तु सानुबन्ध होती है, यानी बराबर चलती रहती है तब उसे "पताका" कहते हैं।[7] जब वह थोड़ी दूर चलकर रुक जाती है या खत्म हो जाती है, तब उसे "प्रकरी" कहते है[8]। जैसे- रामायण में सुग्रीव का वृत्तान्त पताका और शबरी (श्रमणा) का वृत्तान्त प्रकरी का उदाहरण है।

(ख) **स्रोत के आधार पर:** आधिकारिक और प्रासङ्गिक कथावस्तु का ही स्रोत के आधार पर तीन भेद करते हैं- प्रख्यात, उत्पाद्य, तथा मिश्र। इतिहास, पुराण आदि से सम्बन्धित कथानक को प्रख्यात कथावस्तु कहते है, जैसे- कृष्णकथा अथवा नाटकों के कथानक। कवि की कल्पना से उत्पन्न कथानक उत्पाद्य कथावस्तु है, जैसे- मालती माधव की कथा या प्रकरण आदि के कथानक। प्रख्यात और उत्पाद्य के मिश्रण से उत्पन्न कथानक मिश्र कथावस्तु है, जैसे- अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथा या ईहामृग के कथानक।

(ग) **अभिव्यक्ति के आधार पर:** कथावस्तु को पुनः दो प्रकार से विभाजित करते है- सूच्य तथा दृश्य। जो नीरस हो एवं मञ्च पर दिखाए जाने योग्य न हो पर मूल कथानक की पुष्टि के लिए आवश्यक माना गया हो, ऐसा कथाभाग 'सूच्य' होता है और संवादों द्वारा सूचित किया जाना चाहिए। जो मधुर हो, उदात्त (नैतिक) हो एवं रस व भावों से पूर्ण हो उसे ही दिखाया जाता है, इस प्रकार जो रूपक को प्रभावशाली तथा रसमय बनाये – उसे 'दृश्य' कहते है।[9] सूच्य कथांशो को पाँच अर्थोपक्षेपकों के द्वारा प्रकट किया जाता है। दृश्य कथांशो का समावेश अङ्क में होता है।

अर्थोपक्षेपकों की संख्या पाँच है- विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका अङ्कास्य अङ्कावतार। "विष्कम्भक" वह अर्थोपक्षेपक है जिसमें पहले हो चुकी अथवा आगे होने वाली कथा की सूचना मध्यम पात्र वा दो मध्यम पात्रों के वार्तालाप द्वारा संक्षेप में दी जाती है। यह दो प्रकार का होता है- शुद्ध और संकर। "प्रवेशक" भी विषकम्भक की तरह बीती हुई अथवा आगे होने वाली घटनाओं की सूचना नीच पात्रों के माध्यम से देता है। यह दो अङ्कों के बीच में रहता है पहले अङ्क में नहीं रहेगा। नेपथ्य में बैठे पात्रों से रहस्यात्मक कथावस्तु की सूचना देना "चूलिका" है। किसी अंक के अन्त में उस अङ्क में प्रयुक्त पात्रों के माध्यम से उसके आगे के अङ्क में होने वाली कथानक की सूचना देना "अङ्कमुख" या "अङ्कास्य" कहलाता है। जब किसी अङ्क के अन्त में मञ्चस्थ पात्र आगामी अङ्क के कथानक की सूचना देते है तो उसे "अङ्कावतार" कहते है। इसमें पूर्व अङ्क की कथा का विच्छेद न होकर उसी क्रम में दूसरे अङ्क की वस्तु का अवतरण होता है।[10]

(घ) **नाट्यधर्म के आधार पर:** श्राव्य कथावस्तु के तीन भेद पुनः किए जाते है- सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य एवं अश्राव्य। जो कथानक सबके सुनने योग्य वह 'सर्वश्राव्य' अथवा 'प्रकाश' कहलाता है। जो

[5] दशरूपक १/१२।
[6] वही।
[7] "सानुवन्धं पताकाख्यम्" - दशरूपक १/१३।
[8] "प्रकरी च प्रदेशभाक्" -वही।
[9] दशरूपक १/५७।
[10] वही १/५९-६२।

कथानक मञ्चस्थ अन्य पात्रों को न सुनाई दे, केवल किसी पात्र विशेष के सुनने के लिए कही जाय वह 'नियतश्राव्य' है। यह भी 'जनान्तिक' (त्रिपताकारूप हाथ करके अन्य पात्रों की उपस्थिति में दो पात्रों की आपसी बातचीत) और 'अपवारित' (अन्य पात्रों से मुंह फेरकर दो पात्रों की गोपनीय बातचीत) के भेद से दो प्रकार का होता है। जो कथानक सबके सुनने योग्य नहीं होती वह 'अश्राव्य' या 'स्वगत' वा 'आत्मगत' कहलाती है।

नेता तत्त्व: रूपकों के अभिनय में मूल पात्रों की विभिन्न अवस्थाओं का अनुकरण अभिनेता द्वारा होता है जिनसे दर्शक तादात्म्य स्थापित कर लेता है तथा मञ्च पर सजीव अभिनय कर रहे अभिनेता को मूल पात्र मान लेता है। रूपककारों ने प्रधान फल को पाने वाले अभिनेता को नायक-नायिका के रूप में वर्णित किया है।

नायक: नायक ही रूपक के फल का अधिकारी होता है, इसीलिए कथानक में वह साक्षात् उपस्थित या परोक्षतः चर्चित रहता है। आचार्य धनञ्जय ने नायक को २२ गुणों से युक्त बताया है, ये गुण हैं- नम्र, प्रियदर्शी, त्यागी, चालाक, प्रियंवद, रक्तलोक, शुद्ध, वाग्मी, कुलीन, धैर्यवान्, प्रसिद्ध, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृति शक्ति वाला, प्रज्ञावान्, कलावान्, मान पाने वाला, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ एवं धार्मिक।[11] सामान्यतः इन गुणों या लक्षणों से युक्त होने पर भी नायक के चार भेद बतलाए गए हैं- धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत।

धीरललित: नायक निश्चिन्त रहने वाला, मधुर प्रकृति का, सुखी, एवं नृत्य-गीतादि कलाओं में आसक्त रहने वाला होता है।[12] इस कोटि का नायक साम्राज्य का भार अपने मन्त्रियों पर छोड़कर अन्तःपुर में भोग-विलास में लीन रहता है। उदाहरण के लिये रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन इस कोटि का नायक है।

धीरप्रशान्त: नायक सामान्य गुणों (नम्रता, त्याग, दक्षता आदि) से युक्त ब्राह्मण, वैश्य अथवा मन्त्रिपुत्र होता है।[13] उदाहरण के लिये 'मालतीमाधव' का माधव तथा 'मृच्छकटिकम्' का चारुदत्त इस कोटि का नायक है।

धीरोदात्त: नायक शोक क्रोधादि मनोवेगों से विचलित न होने वाला, अतिगम्भीर, क्षमाशील, अपनी प्रशंसा न करने वाला, स्थिर चित्त वाला, नम्रता शिष्टता आदि गुणों से अभिमान आदि दुर्गुणों को छिपा लेने वाला, स्वीकृत कार्य को पूर्ण मनोयोग से निभाने वाला होता है।[14] उदाहरण के लिए राम,दुष्यन्त आदि इस कोटि के नायक हैं।

धीरोद्धत: नायक दर्प (शूरता, नीति-कौशल आदि का) और मात्सर्य से भरा हुआ, माया-छल-कपट से पूर्ण, अहङ्कारी, चञ्चल, क्रोधी और अपने गुणों का बखान करने वाला (आत्मश्लाघी) होता है।[15] उदाहरण के लिए भीम, चाणक्य, परशुराम आदि इस कोटि के नायक हैं।

नायक के सहायक: नायक के गुणों से कुछ न्यून गुणों से युक्त उसके सहायक होता है। जो कई प्रकार है-

1. शृंगार-सहायक-"पीठमर्द' (मानवती नायिका को खुश करके नायक के अनुकूल बनाने वाला एवं पताका का नायक), 'विट' (किसी एक विद्या (काम) में पारगंत), 'चेट' (नायक-नायिका का मेल कराने मे निपुण), 'विदूषक' (हास्य उत्पन्न कराने वाला)।
2. धर्मसहायक- पुरोहित, आचार्य, गुरु आदि।
3. अर्थसहायक- मन्त्री, सचिव तथा अमात्य।
4. दण्ड-सहायक- कुमार, सुहृद, दण्डनायक आदि।
5. संवादसहायक- दूत, गुप्तचर।
6. अन्य सहायक- नपुंसक, किरात, मूक,वामन आदि।

नायिका: नायक के सामान्य गुणों से युक्त, नायक की प्रिया (जिसको देखकर नायक के हृदय में रतिभाव उत्पन्न हो) वह नायिका कहलाती है। शोभा, कान्ति, दीप्ति और यौवन नायिका के आवश्यक गुण हैं। वैसे चरकसंहिता में वयस्, रूप, वचन तथा हाव से युक्त सुन्दरता किसी स्त्री के प्रिय लगने के कारण हैं। आचार्य धनञ्जय ने नायिका के कई प्रकार से भेद-उपभेद किये है जिनमें कुछ महत्वपूर्ण भेद अधोलिखित है-

(क) सामाजिक आधार पर: नायिका मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है- स्वा (स्वीया), परकीया (अन्या) और सामान्या। 'स्वीया' अपनी विवाहित स्त्री होती है जैसे- शकुन्तला। 'परकीया' दूसरे की स्त्री अथवा प्रेमिका होती है जैसे- सागरिका। साधारण स्त्री वेश्या आदि 'सामान्य' नायिका है जैसे- बसन्तसेना।

(ख) वय के आधार पर: प्रधान नायिकाओं को उनकी अवस्था के अनुसार तीन प्रकार से विभाजित किया जाता है- मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा। मुग्धा नायिका युवावस्था में प्रवेश करने वाली, रतिकार्य में दिलचस्पी होते हुए भी उससे बचने वाली होती है, मध्या नायिका उद्यत्, तरुणावस्था वाली, कामासक्त,

[11] दशरूपक २/१-२।
[12] "निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः" -दशरूपक २/३।
[13] "सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः" -वही २/४।
[14] वही २/४-५।
[15] वही २/५-६।

रति में समर्थ होती है और प्रगल्भा नायिका प्रौढ़ अवस्था वाली, काम कलाओं में निपुण होती है।

(ग) **मान के आधार पर:** रूठने मनाने की दृष्टि से नायिका धीरा, अधीरा और धीराधीरा के रूप में तीन प्रकार का कहा गया है। नायक अन्य नायिका से अनुराग करता हो तो धीरा व्यंग्य के द्वारा उसे मानसिक चोट पहुँचाती है, धीराधीरा रोती भी है और व्यंग्य भी करती है। अधीरा कोप से नायक को कटुवचन सुनाती है।[16] यही मध्या तथा प्रौढ़ा के भेद से छः प्रकार के हो जाते है।

(घ) **गुण के आधार पर:** नायिका उत्तमा, मध्यमा और अधमा के रूप में तीन प्रकार की होती है।

(ङ) **नायक के प्रेम के आधार पर:** नायिका दो प्रकार की है- ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा। ये नायिकाएँ नाटिका में पाई जाती है।

(च) **अन्य भेद:** आठ प्रकार की अन्य नायिकाएँ होती हैं- 'स्वाधीनभर्तृका' जिसका पति साथ में रहता है तथा उसके वश में रहता है। 'वासकसज्जा' जो अपने को तथा निवास स्थान को सजा कर रखती हो। वासक का अर्थ है प्रियतम के साथ विलास पूर्वक रात बिताना तथा सज्जा का अर्थ है सजावट या शृङ्गार। 'विरहोत्कण्ठिता', जो अपने प्रियतम के अपराधी न होने पर भी, उसके निश्चित समय से विलम्ब करने पर अपने प्रियतम के विरह में उत्कण्ठित चित्त वाली नायिका हो। 'खण्डिता' वह नायिका जो प्रियतम के दूसरे स्त्री के साथ किए गए सहवास को जानकर ईर्ष्या से कुण्ठित मन वाली। 'कलहान्तरिता' नायक के अपराधी होने पर उसका तिरस्कार करके पछताने वाली नायिका। 'विप्रलब्धा' मिलन के लिए निश्चित स्थान एवं समय पर प्रियतम के न आने पर अपमानित होने वाली नायिका। 'प्रोषितभर्तृका' किसी कार्यवश प्रियतम के परदेश जाने से दुःखित नायिका। और अन्तिम है 'अभिसारिका' कामपीड़ा से आतुर होकर प्रियतम के पास जाने वाली या उसे ही अपने पास बुलाने वाली नायिका।

नायिका की दूतियां: नायक के सहायक विदूषक आदि के समान गुणों से युक्त नायिका की दूतियां होती हैं। ऐसी दूतियां दासी, सहेली, धोबिन, नाइन, धाई की लड़की, पड़ोसिन, सन्यासिनी, तापसा आदि, चित्रकार आदि की स्त्री भी होती है।[17]

रस तत्त्व

रूपक के तत्त्वों में तीसरा तत्त्व रस है। जितनी महत्ता वस्तु तथा नेता का है उतना ही रस का भी है। धनञ्जय ने रूपकों को रसाश्रय कहते हुए कहा कि कथावस्तु और नेता तो साधन-मात्र हैं, रस ही रूपक का साध्य है। रस के प्रवर्तक आचार्य भरत ने कहा है कि नाट्य में कोई अर्थ रस के अभाव में प्रवर्तित नहीं हो सकता।[18] उनके अनुसार रस का अर्थ आस्वाद्य (**आस्वाद्यत्वाद्रसः**) होता है।

रस-परिभाषा तथा लक्षण

नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरत ने रस को पारिभाषित करते हुए कहा- "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः"[19] अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से निष्पन्न होने वाला स्थायी भाव रस है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने रस का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा- सहृदयों के मन में रत्यादि भाव हमेशा वासना के रूप में विद्यमान रहता हैं। आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव के द्वारा वे आविर्भूत हो जाते हैं। अनुभाव उन्हे प्रतीति के योग्य बना देते हैं तथा व्यभिचारी भाव उन्हें स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार इन तीनों के द्वारा व्यञ्जना वृत्ति से अभिव्यक्त होकर स्थायी भाव ही रस कहलाता है।[20] साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रस को सरलतम रूप में परिभाषित करते हुए कहा है-

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम्॥[21]

अर्थात् सहृदय के हृदय में विराजमान रत्यादिरूप स्थायीभाव जब विभाव, अनुभाव और संचारीभाव (व्यभिचारीभाव) के द्वारा अभिव्यक्त हो उठते हैं तब उस आस्वाद या आनन्दरूप को रस कहा जाता है। अतः विभाव, अनुभाव आदि ही रस के प्रधान अंग है।

स्थायी भाव: यह रस का मूल अङ्ग है जो अन्य भावों के संयोग से रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। आचार्य भरत के अनुसार नौ रस है तथा प्रत्येक का अलग-अलग स्थायी भाव है। इस तरह स्थायी भावों की संख्या नौ हुई- रति (शृंगार), हास (हास्य), शोक (करुण), विस्मय (अद्भुत), क्रोध (रौद्र), भय (भयानक), जुगुप्सा (बीभत्स), उत्साह (वीर), तथा निर्वेद या शम (शान्त)।

विभाव: जो सहृदयों के हृदय में भावोद्रेक करता है उन कारणों को विभाव कहते है। यह दो प्रकार का होता है- **आलम्बन** (जिसका सहारा लेकार स्थायी भाव जागृत हो जैसे- नायक, नायिका तथा अन्य पात्र) और **उद्दीपन**

[16] दशरूपक २/१७।
[17] वही २/२९।
[18] "न हि रसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते" - नाट्यशास्त्र ६/३१ के बाद।
[19] नाट्यशास्त्र ६/६१।
[20] काव्यप्रकाश ४/२।
[21] सा.द. ३/१।

(भावों को उद्दीप्त करने वाला जैसे प्रकृति, एकान्त स्थान तथा अन्य वातावरण)। यह विभाव ही स्थायी को निष्पन्न करता है इसलिए आचार्य धनञ्जय ने कहा है- "ज्ञानमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्"।[22]

अनुभाव: विभावों से प्रकाशित होने वाले भावों की सूचना देने वाले को अनुभाव कहते हैं। (अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः)। यह चार प्रकार का है- कायिक, वाचिक, मानसिक, तथा सात्त्विक।

व्यभिचारी या संचारी भाव: अन्तःकरण में चल रहे अस्थायी मनोविकार, जो क्षण भर के लिए उत्पन्न होकर स्थायी भावों को गति देते हैं व्यभिचारी भाव कहलाते है। इनकी संख्या ३३ (निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, विषाद, त्रास इत्यादि) हैं।

उपसंहार

इस प्रकार रूपकों के तीन मूल तत्त्व है- वस्तु, नेता, रस। वस्तु मुख्यतया दो प्रकार की होती है- मुख्य (अधिकारिक कथावस्तु) एवं प्रासंगिक (मुख्य कथावस्तु के प्रयोजनसिद्धि में सहायक)। कथावस्तु का प्रमुख कार्य अथवा फल होता है आनन्द के साथ ही एक या दो पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति। जिसके सिद्धि के पाँच कारण होते है जिन्हें अर्थप्रकृति (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य) कहा जाता है। इस फल के प्राप्ति के लिए प्रारब्ध कार्य पाँच कार्यावस्थाएँ (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम) होती है। इन पाँच अर्थप्रकृतियों एवं पाँच कार्यावस्थाओं के संयोग से मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं उपसंघृत ये पाँच सन्धियाँ बनती है।

रूपक का नेता मधुर, त्यागी, सर्वप्रिय, चालाक, शुचि, तर्कशील, प्रख्यात वंशी, स्थिर बुद्धि, उत्साही इत्यादि गुणों से युक्त शूर, दृढ, तेजस्वी और धार्मिक होना चाहिए। नेता धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोद्धत एवं धीरोदात्त भेद से चार प्रकार का होता है। नायक के गुणों से युक्त नायिका भी होती है। नायिका के मुख्य तीन भेद है- स्वीया, अन्या, तथा साधारणी।

विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारिभावों से आस्वाद्य योग्य बनाया गया स्थायीभाव रस होता है। आस्वाद्य योग्य रस से चित्त का विकास, विस्तार, क्षोभ एवं विक्षेप होता है जिससे क्रमशः चार मूल रसों श्रृंगार, वीर, वीभत्स एवं रौद्र निष्पन्न होता है। और इनसे ही क्रमशः हास्य, अद्भुत, भयानक एवं करुण रसों की निष्पत्ति होती है। अतः रसों की संख्या आठ ही हैं।

इस प्रकार रूपक के भेदक तत्त्व- वस्तु, नायक एवं रस विशेष प्रपञ्च करता हुआ रूपकों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्यशास्त्र: भरत मुनि- संपादक: बाबूलाल शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी.
2. द्विवेदी, पारसनाथ, भरतमुनि-नाट्यशास्त्र, सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि., वाराणसी.
3. शर्मा 'ऋषि', डॉ. उमाशङ्कर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, संस्करण, 2017.
4. दाहाल, लोकमणि, दशरूपक: धनञ्जय (धनिक की अवलोक वृत्ति सहित), चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण, 2008.
5. सिंह, डॉ. सत्यव्रत, साहित्य दर्पण (सम्पूर्ण), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण, 2018.
6. त्रिपाठी, डॉ. राधावल्लभ, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2007.
7. आप्टे वाम शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहर नगर दिल्ली, 1939.

[22] दशरूपक ४/२।